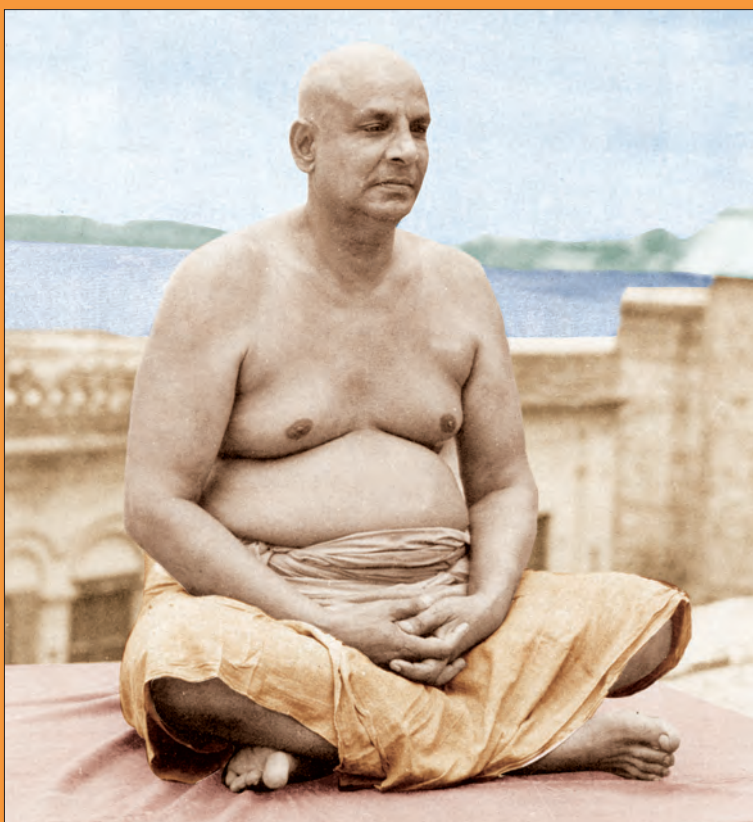


माली सींचे मूल को 1 योगविद्या की योजना

स्वामी शिवानन्द सरस्वती
पहली पीढ़ी



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योगविद्या की योजना

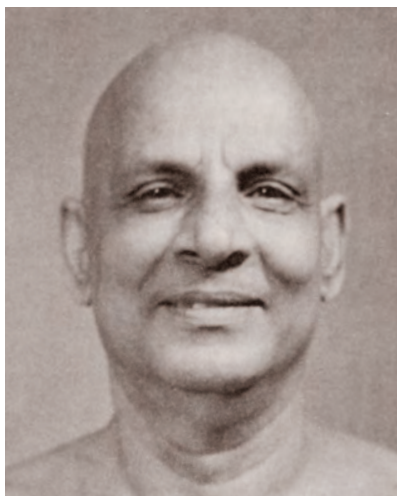
स्वामी शिवानन्द सरस्वती
पहली पीढ़ी



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योगविद्या की योजना

योगविद्या की मन पर विजय पाने की योजना सुव्यवस्थित तरीके से आगे बढ़ती है। यह पहले स्थूल, और फिर सूक्ष्म मानसिक अभिव्यक्तियों को नियंत्रित करती है। योग के यम दुर्गुणों का निर्मूलन करके सद्गुणों का विकास करते हैं। यौगिक नियम साधक की आदतों और व्यवहारों को नियमित करते हैं। दुर्गुणों और नकारात्मक आदतों का दास बनने के बजाय अब साधक अपने व्यवहार को नियंत्रित कर दृढ़



संकल्प द्वारा सद्गुणों और सकारात्मक आदतों को विकसित करता है।

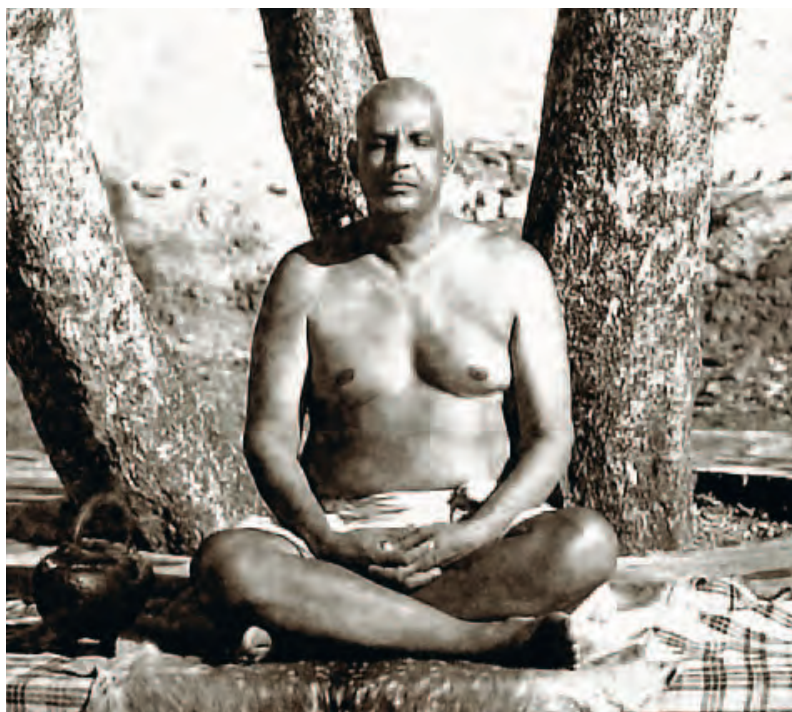
शारीरिक हलचल की स्वाभाविक प्रवृत्ति को, अनियंत्रित और निरुद्देश्य शारीरिक गति को आसनों के अभ्यास द्वारा रोका जा सकता है। इस अभ्यास से कालान्तर में व्यक्ति के चरित्र का विकास होता है, सद्गुणों का अर्जन होता है और पुरानी आदतों की जगह पर नयी आदतें आ जाती हैं। शारीरिक क्रियायें नियमित और नियंत्रित हो जाती हैं। मन की चंचलता श्वास द्वारा नियंत्रित की जाती है और इस प्रक्रिया को प्राणायाम कहते हैं।

हाँलाकि इस प्रक्रिया से विचार रुक जाते हैं, फिर भी इच्छाएँ और वासनाएँ मन को उद्विग्न करती रहती हैं। इसके लिए योग का पाँचवाँ अंग

प्रत्याहार है, जिसमें इंद्रियों को विषय-वस्तुओं से हटाकर मन को अंतर्मुखी किया जाता है।

प्रत्याहार साधक को यौगिक सोपान के छोटे चरण, धारणा के लिए तैयार करता है। मन का एक बिन्दु पर एकाग्र होना धारणा है। अन्तर्मुखी मन किसी प्रतीक या लक्ष्य पर स्थिर हो जाता है। धारणा जब गहरी और लम्बी होती है तो ध्यान में परिवर्तित हो जाती है।

ध्यान में गहराई और निरंतरता के परिणामस्वरूप समाधि लग जाती है। यह असीम सत्ता से जुड़ने की आनंदमय अवस्था है, जो जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर देती है। यह सर्वोच्च अनुभव हमें अनेकता के पीछे दिव्य एकता देखने की दृष्टि प्रदान करता है। हमारे जीवन और कर्मों में परम सत्ता की ऊर्जा की सहज अभिव्यक्ति होने लगती है। हमारे कर्म ईश्वरीय योजना को उसकी गरिमामयी पराकाष्ठा तक ले जाते हुए विशुद्ध रूप से मानवता के कल्याण के लिए होते हैं।



दिव्य जीवन क्या है? दिव्य जीवन योग पर आधारित और वेदान्त की भावना से परिव्याप्त जीवन है। यह निःस्वार्थता, सेवा, आध्यात्मिक अभ्यासों और आत्म-ज्ञान से निर्मित है। योग और वेदान्त दिव्य जीवन के ताने-बाने हैं। इसके विषय में हमें जितनी अधिक जानकारी होती है, इसके महत्त्वपूर्ण पक्षों की समझ, स्मृति और अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, हम अपने चयनित मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए उतने ही तत्पर होते हैं। याद रखिये कि दिव्य जीवन के विषय में जानने के साथ-साथ उतना ही महत्त्वपूर्ण है उसे जीना।

योग और व्यावहारिक वेदान्त का जीवन जीने के प्रयास में हम अनेक बाधाओं का सामना करते हैं, और कई बार ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जिन्हें हमें बुद्धि और ज्ञान के द्वारा संभालना होता है। इसलिए इन विषयों की चर्चा और इनके गूढ़, सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान हमें किसी भी परिस्थिति का प्रभावपूर्ण ढंग से सामना करने के लिए तैयार करेगा।

स्वयं को समझना

आप अपने ज्ञान, भक्ति, सेवा और योग को किस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं? अपने विचार, वाणी और कर्मों के माध्यम से। नारद भक्ति सूत्रों में भक्ति की व्याख्या शायद आपको उतना प्रभावित न करे, परन्तु कीर्तन, प्रार्थना, ध्यान और संतों की सेवा द्वारा आपको वह भक्ति सहजता से प्राप्त हो सकती है। भक्ति तब अभिव्यक्त होती है जब यह हृदय में प्रकट होती है, अन्यथा विश्व के सारे शास्त्र किसी काम के नहीं रहते। साधना, वेदान्त और योग को हृदय में जीना है। ऐसा करने के लिए व्यक्ति को स्वयं को जानना आवश्यक है। व्यक्ति को सर्वप्रथम इस रहस्यमय धर्मक्षेत्र को, अपने हृदय और मन को समझना है।

यह महत्त्वपूर्ण क्यों है? आप जहाँ भी हैं, अपने आप से भाग नहीं सकते। यदि आप सोचते हैं कि निवृत्तिमय, आध्यात्मिक जीवन जीने में पारिवारिक बन्धन एक बड़ी बाधा है तो अपना परिवार छोड़ सकते हैं। आप अपने घर या शहर से भाग भी सकते हैं। यदि आप सोचते हैं कि कुछ लोगों की संगत अनुकूल नहीं है तो आप उनका साथ छोड़ सकते हैं। ठीक है, आप अपने परिवार से, अपने घर-शहर से और लोगों की संगत से दूर चले जाते हैं, परन्तु आश्चर्य की बात यह कि आप स्वयं से भाग नहीं सकते।

इसका तात्पर्य क्या है? आपको अपना पेट, अपनी इन्द्रियाँ, और साथ ही अपनी इन्द्रियों की आदतों को साथ लेकर चलना है। आपको अपने साथ अपना शरीर लेकर चलना है, साथ ही राग-द्वेष, प्रेम-घृणा, आशा-निराशा से युक्त मन को भी साथ लेकर चलना है। चाहे आप उत्तर काशी में रहें या मुम्बई में, हिमालय की शान्ति में या किसी बड़े नगर के शोरगुल में, आपको हमेशा अपनी इन्द्रियों और मन को साथ लेकर चलना है। अगर आप नहीं जानते कि उनसे कैसे निपटा जाय, उन्हें कैसे संभाला जाय, तब तो वे ही आप पर हावी हो जाएँगी। फिर क्या होगा? आपकी विरक्ति और आध्यात्मिकता छू-मंतर हो जायेगी। जब तक आप मन की गहराई में नहीं उतरते और अपने अन्तर्मन को समझने का प्रयास नहीं करते, आप सफलतापूर्वक साधना नहीं कर सकते। आप जहाँ भी जायेंगे अन्तर्मन आपका पीछा करते रहेगा।

मन भगवान द्वारा दिया गया वरदान है, क्योंकि मन के बिना न तो आप ईश्वर चिन्तन कर सकते हैं, न ही एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं। मन के भावों, विचारों और संवेदनाओं के बिना आप भावना और भक्ति का विकास भी नहीं कर सकते। इसलिए मन एक आवश्यक उपकरण है, लेकिन इसे अगर समुचित रूप से समझा और संभाला नहीं गया तो यह विनाशकारी हो जायेगा। अहित करने वाले मन को अपना हितैषी बनाना है, मन की अशुद्धता को हटाकर उसे शुद्ध बनाना है। यह भी योग का उतना ही महत्वपूर्ण अंग है जितना कीर्तन या जप। एक साधक होने के नाते आपको अपनी विवेक बुद्धि का उपयोग करना है और इन्द्रियों एवं मन को नियंत्रित करने के महत्वपूर्ण कार्य को संभालना है। आप किसी अनियंत्रित चीज को तभी संभाल सकते हैं जब आप उसे समझते हैं। घुड़सवार जब तक घोड़े की आदतों को नहीं जान लेता, उसे संभाल नहीं सकता। इसलिए जानकारी और समझ साधना का एक महत्वपूर्ण अंग है।

संस्कारों का भण्डार

यद्यपि मन रहस्यात्मक ढंग से काम करता है, फिर भी हम मानसिक प्रक्रिया के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों का विश्लेषण कर सकते हैं। मनुष्य का मन क्या है? यह किस चीज से बना है? यह किन लकीरों पर चलता है? मन पूर्व अनुभवों की उपज है। हम लोग एक छोटा-सा उदाहरण लेंगे और उससे यह प्रक्रिया



सैद्धान्तिक तौर पर समझ आ जायेगी। मन को मिला अनुभव किसी प्रत्यक्ष इन्द्रिय-ज्ञान के रूप में हो सकता है। हम किसी चीज को सूंघते हैं, किसी चीज का स्पर्श करते हैं, किसी चीज का स्वाद लेते हैं या किसी अन्य तरीके से अनुभव करते हैं। एक साथ बहुत-सी चीजों का संयोग भी हो सकता है और तत्काल मन पर एक छाप उसी तरह पड़ जाती है जिस तरह ग्रामोफोन रेकॉर्ड पर ध्वनि रेखा बन जाती है। इस छाप को ही संस्कार कहते हैं।

संस्कार की प्रकृति क्या होती है? क्या यह भूमि पर बनी हल की रेखा की तरह है, या ग्रामोफोन रेकॉर्ड पर बनी ध्वनि रेखाओं के समान है? नहीं, यह गत्यात्मक है। इस प्रकार के कई सारे अनुभव मानव मन पर पड़े संस्कार को एक सक्रिय, जीवन्त तत्त्व बना देते हैं। यह व्यक्ति के चरित्र में एक गत्यात्मक प्रवृत्ति, एक वासना बन जाती है, और फिर वासनाओं का समूह मन को सदा उत्तेजित अवस्था में रखता है। वासनाएँ सदा मन के सरोवर में लहरें उत्पन्न करती रहती हैं और ये निरन्तर लहरें वृत्तियाँ बनाती हैं।

एक साधारण मन में बहुत-सी वृत्तियाँ उदय और अस्त होती रहती हैं। हमलोग उस अनुभव की इच्छा करना प्रारम्भ कर देते हैं जिसने वह संस्कार

बनाया जो उन वृत्तियों के उदय होने का कारण है। इच्छा की इस अवस्था में भी कोई हानि नहीं है, परन्तु जब अहंकार का खेल शुरू होता है और हमलोगों का 'मैं' उन इच्छाओं से तादात्म्य स्थापित कर लेता है तब सारी समस्या प्रारम्भ होती है। 'चाह' के स्थान पर 'मैं चाहता हूँ' आ जाता है और इसी बिन्दु पर व्यक्ति मन के शिकंजे में आ जाता है।

आन्तरिक संघर्ष

आप चाहे किसी गुफा में ध्यान कर रहे हों या किसी नगर में, जब 'मैं' किसी इच्छा के साथ सामने आ जाता है तो ध्यान गौण हो जाता है। अब मन के दो पक्ष हो जाते हैं। मन सोचता है, 'क्या मुझे इस इच्छा की पूर्ति करनी चाहिए या अपना ध्यान जारी रखना चाहिए?' यदि शुद्ध मन प्रबल होता है तो वह 'नहीं' कहकर इच्छा को हटा देता है और ध्यान जारी रखता है। यदि अशुद्ध मन हावी होता है तो इच्छा प्रबल हो जाती है। मनुष्य इच्छा-पूर्ति के लिए प्रयास करता है और योगमार्ग से च्युत हो जाता है।

योग का अर्थ केवल निर्विकल्प समाधि नहीं है। योग का अभ्यास प्रतिक्रिया होना चाहिए। यदि मन में कोई अशुद्ध विचार आता है और आप उसे हटाने में असमर्थ हैं तो आप योग में असफल हो गए। प्रत्येक विचार और प्रत्येक कर्म में आपको अपनी वृत्तियों पर विजयी होना है – तब योग सफल होता है और दिव्य जीवन जिया जा सकता है। इस प्रक्रिया के लिए कितना समय चाहिए? आधे क्षण में एक निर्णय ले लिया जाता है और संस्कार की वह लम्बी प्रक्रिया जिसने इच्छा को जन्म दिया पराजित हो जाती है, उच्चतर मन निम्नतर मन पर शानदार विजय प्राप्त कर लेता है।

मन की प्रक्रिया ऐसी है कि अनुभव से आप संस्कार प्राप्त करते हैं, संस्कार से वासना उपजती है, और वासना से वृत्ति। कल्पना वृत्ति को एक इच्छा बनाती है। तब अहंकार आकर इच्छा से जुड़ जाता है और यह तृष्णा बन जाती है। तब आप उस तृष्णा की पूर्ति के लिए चेष्टा करने को बाध्य हो जाते हैं।

वैज्ञानिक एक निरन्तर गति वाली यंत्र-प्रणाली को खोजने का प्रयास कर रहे हैं जो कभी रुकती नहीं है। वैसी यंत्र-प्रणाली आप में है, आपके मन के रूप में। आपको मन, वासनाओं और संस्कारों को समझना होगा। जिन

संस्कारों को आपने बना दिया है वे तो वहीं हैं, आप कुछ नहीं कर सकते, पर कम-से-कम एक काम तो जरूर कर सकते हैं। आप नये संस्कारों का बनाना रोक सकते हैं और पुराने संस्कारों को ताजे संस्कारों के द्वारा अधिक सशक्त होने से रोक सकते हैं। यह कैसे संभव है?

नवीन संस्कारों का निषेध – उन्हें जला दो

प्रतिदिन आप नये अनुभवों को प्राप्त कर रहे हैं, प्रतिदिन आप कितनी सारी चीजों का प्रत्यक्ष ज्ञान पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त कर रहे हैं। तब आप किस प्रकार इन अनुभवों को मन पर प्रभाव डालने से रोक सकते हैं? इसके लिए क्या कोई विधि है?

यदि अहंकार नहीं है तो विषय मन में गहराई तक नहीं उतरते। यदि मन किसी अन्य विचार में व्यस्त है तो इन्द्रियों द्वारा लाया गया अनुभव कोई विशेष प्रभाव नहीं डालेगा, परन्तु यदि 'मैं' वहाँ है तो वह आसानी से इन अनुभवों को ग्रहण कर लेता है और आप में विषयों के लिए इच्छा उत्पन्न करता है।

सभी इच्छाओं को जलाने के लिए केवल एक ही अग्नि है। नचिकेता के पास यह अग्नि थी। उसके समक्ष कितनी आकर्षक और मनमोहक चीजों का प्रस्ताव रखा गया – धन, सौंदर्य, बल, शक्ति, राज्य, सभी विद्यायें और ललचाने वाली विषय-वस्तुएँ, परन्तु नचिकेता ने सभी प्रभावों को भस्म कर दिया, क्योंकि उसके पास मुमुक्षुत्व की अग्नि थी। यह एक ऐसी सकारात्मक अग्नि है जो इच्छाओं और वासनाओं को भस्म कर देती है। यह अग्नि सभी सच्चे साधकों की विशेषता होनी चाहिए।

यदि आप दिव्य जीवन जीना चाहते हैं तो आपका हृदय मुमुक्षुत्व का निवास-स्थान होना चाहिए, आपमें सदा योगाग्नि जलती रहनी चाहिए। आप अपने जीवन का बाह्य स्वरूप तो पूरी तरह बदल नहीं सकते लेकिन भीतर मुमुक्षुत्व रहना चाहिए। यह अग्नि दिन और रात जलनी चाहिए, चाहे आप जगे हों या सोये हों, अकेले हों या दूसरों के बीच हों, ध्यान में हों या काम में व्यस्त हों। यह अग्नि बुझनी नहीं चाहिये।

यह मुमुक्षुत्व आपके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाना चाहिये, तब आप दिव्य जीवन वास्तव में जी सकेंगे। यदि यह अग्नि आपके भीतर



प्रज्ज्वलित है, तो आपको चिंता करने की आवश्यकता नहीं कि आप किस स्थान पर रह रहे हैं या कौन-सा काम कर रहे हैं, क्योंकि आप हमेशा दिव्य जीवन जी रहे होंगे। आप इन्द्रिय सुखों के शिकार नहीं हो सकते, परन्तु यदि आपकी सतर्कता के बावजूद भी किसी इन्द्रिय विषय का प्रभाव आन्तरिक चेतना में चला जाता है, तो आपको यह मालूम रहे कि मुमुक्षुत्व के द्वारा उसे कैसे जलाया जाता है। इसके पूर्व कि वह बाहरी द्वार में प्रवेश करे आपको उसे जला देना है। इसके लिए कौन-सी विधियाँ हैं?

नवीन संस्कारों का निषेध – प्रत्याहार और अनासक्ति

इसके लिये एक विधि है अपने मन को सदा अंतर्मुखी रखना। कभी भी मन को पूर्णरूपेण बहिर्मुखी न होने दें, ताकि जब आप विषयों के बीच भी विचरण कर रहे हों, इन्द्रियाँ बहिर्मुखी न रहें। यह एक कठिन विधि है, पर इसका अभ्यास तो करना ही है। यह प्रत्याहार अनिवार्य है। एक साधक को हमेशा प्रत्याहार की इस महत्त्वपूर्ण योग्यता को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

दूसरी विधि है अनासक्त होना। आप इसका क्या अर्थ लगाते हैं? यदि कोई मांसाहारी व्यक्ति बाजार में मांसाहारी भोजन देखता है तो उसके मुँह में पानी आ सकता है, लेकिन अगर व्यक्ति शुद्ध शाकाहारी है तो उस भोजन का उसके लिये कोई अर्थ नहीं होगा क्योंकि वहाँ रुचि का अभाव है। इसी तरह हमें निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय द्वारा संसार की असारता, सांसारिक विषयों की व्यर्थता और समस्त सृष्टि की नश्वरता को देख-समझकर अपने अंदर अनासक्ति की मनोवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए। ऐसे विचारों को सदा आत्मसात् कर मन की एक अभिवृत्ति निर्मित होती है, जहाँ ये चीजें अपना आकर्षण खो देती हैं। फिर अगर ये चीजें आ भी जाती हैं तो अन्दर से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। आपकी उनमें रुचि ही नहीं होती।

जिन चीजों को लोग नहीं चाहते, उनके विषय में यह स्वाभाविक अनुभव होता है कि उनकी ओर रुचि नहीं होती। यही भाव सभी इन्द्रिय विषयों और सांसारिक चीजों के सम्बन्ध में बन जाना चाहिए। साधक को विषयों के बीच रहते हुए भी अनासक्ति की मनोवृत्ति रखनी चाहिए। यह विधि प्रत्याहार के समान नहीं है, लेकिन फिर भी इस मनोवृत्ति का क्रमशः विकास किया जा सकता है और इसकी प्रबलता बढ़ाई जा सकती है।

इस प्रकार, प्रत्याहार और अनासक्ति द्वारा विषयों के संस्कारों को उनकी प्रारम्भिक अवस्था में ही दग्ध किया जा सकता है। यदि आपको उद्विग्न करने वाले विषयों के मध्य रहना पड़ता है तो आप इन दो विधियों द्वारा उनसे सम्पर्क काट सकते हैं। इसके बावजूद भी यदि कोई इन्द्रिय अनुभव आपके अन्तःकरण में चला जाता है तो उसे नकार दें, उसे मुमुक्षुत्व की अग्नि द्वारा जला दें। आपको संसार में इसी तरह रहना चाहिये।

भगवद् स्मरण

किसी संत ने कहा है कि अगर आपको कांटों से भरे जंगल से गुजरना हो तो आप पूरे जंगल को दरियाँ बिछाकर ढक तो नहीं सकते। एक बुद्धिमान मनुष्य जूते पहन लेगा। यह उतना ही प्रभावी होगा जितना पूरे जंगल को दरियों से ढक देना, क्योंकि जहाँ कहीं भी वह जाएगा सुरक्षा बनी रहेगी। इसी प्रकार भगवद् नाम के मानसिक जप और ईश्वर या किसी महान् आदर्श के सतत् स्मरण द्वारा हम अपनी सुरक्षा कर सकते हैं ताकि हम इन्द्रिय विषयों के

सम्पर्क से प्रभावित न हों। यह अभ्यास मन के लिए एक सकारात्मक आधार बना देता है। मन की बाह्य विषयों की ओर जाने की प्रवृत्ति कम हो जाती है, क्योंकि अब वह एक आधार से जुड़ा है। ये सामान्य सूझ-बूझ बुद्धि की विधियाँ हैं जिन्हें व्यक्ति को एक आन्तरिक उपकरण की तरह रखना चाहिए।

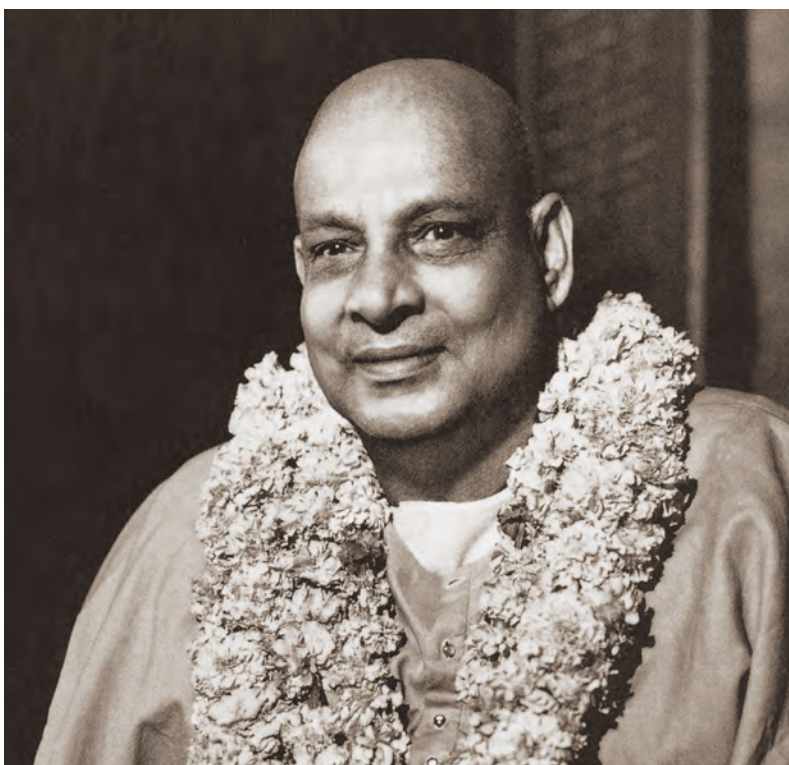
किसी भी इच्छा के साथ स्वयं को न जोड़ें। यदि इच्छा बहुत प्रबल हो तो आप भी अड़ियल बने रहें, उसके सम्मुख घुटने न टेकें, बल्कि अपना ध्यान हटा लें। मैंने हमेशा कहा है, 'इच्छा के प्रकट होते ही उसे हटा दें।' यदि मन में कोई इच्छा आती है और आप उसे पूरा कर देते हैं, तो जिस संस्कार के कारण वह इच्छा उत्पन्न हुई थी, वह मजबूत हो जायेगा। तात्पर्य यह कि इच्छा-पूर्ति द्वारा इच्छा कभी नष्ट नहीं होती। इच्छाओं को पूरा करके आप उन्हें कभी समाप्त नहीं कर सकते। जैसे अग्नि की ज्वाला घी डालने से बुझेगी नहीं, वैसे ही इच्छा पूरी करने से वह मजबूत होती है।

मन के साथ सहयोग न करें। जब मन में इच्छायें उत्पन्न हों तो उन्हें पूरा न करें। मन का स्वभाव ही है इच्छा करना। मन और इच्छा एक-दूसरे के पर्याय हैं। इच्छाओं की पूर्ति न करना ही मन पर विजय प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है।

विवेक

मन को आप जितना अधिक समझने लगते हैं, उतना ही आप इसके सूक्ष्म खेलों और प्रक्रियों का सामना करने में सक्षम हो जायेंगे। तब आप मन को साधना के लिए एक प्रभावी उपकरण के रूप में उपयोग कर सकेंगे। एक साधक के रूप में आपको सबसे अनुकूल परिस्थितियाँ दी जा सकती हैं। आपको अनुकूल परिवेश, आदर्श संगति, आध्यात्मिक पुस्तकें दी जा सकती हैं, फिर भी यदि आप मन की रहस्यात्मक प्रकृति को नहीं समझते, अपनी वासनाओं को कम नहीं करते, और अपनी संकल्प-शक्ति को मजबूत नहीं करते तो किसी चीज का उपयोग नहीं कर सकते।

इसलिए मन का अध्ययन करें, इसे अच्छी तरह समझें और जानें कि इसे कैसे संभाला जाता है। यह योग, वेदान्त और दिव्य जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। साधना के प्रारम्भ में यह अनिवार्य है। जब आप इसका अभ्यास कर लेते हैं तो ईश्वर-साक्षात्कार सरल हो जाता है। कहा जाता है कि



ईश्वर-साक्षात्कार फल-फूल तोड़ने के समान सरल है, बशर्ते आप अशुद्धियों से पूर्णरूपेण मुक्त हो गये हों। इसलिए आपको धैर्यपूर्वक प्रयास करते जाना है। विनम्रता, निष्ठा और गम्भीरता के साथ आप अपने मन के अध्ययन में जितना अधिक समय लगायेंगे, योग मार्ग पर सफल होने और दिव्य जीवन जीने में उतने समर्थ होंगे।

मन में एक शाश्वत संघर्ष चल रहा है। यह संघर्ष मन की निम्नतर वासनाओं और उच्चतर आध्यात्मिक आकांक्षाओं के बीच है। मन का वह भाग जो इन्द्रियों द्वारा बाहर की ओर खींचा जाता है और मन का वह भाग जहाँ विवेक ने अभिव्यक्त होना प्रारम्भ कर दिया है, इन दोनों के बीच निरंतर संघर्ष चलता है। विवेक यह चयन करना प्रारम्भ कर देता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित, क्या करना चाहिए और क्या नहीं, अपनी प्रगति के लिए क्या अनुकूल है और क्या प्रतिकूल।

जब विवेक की क्षमता जागृत होती है तब साधक क्यों और किस लिए जैसे प्रश्न करना प्रारम्भ करता है। विवेक की जागृति सत्संग से या जीवन के कठिन अनुभवों से या पूर्व संस्कारों के जागने से या अन्य किसी भी कारण से हो सकती है। विषय-वासनाओं से भरा निम्न मन व्यक्ति को नीचे खींचने का प्रयास करता है, जबकि उच्चतर मन ऊपर की ओर खींचता है। अन्त में मनुष्य का आध्यात्मिक स्वरूप उसके निम्नतर, विषयासक्त पक्ष पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर लेता है और उसे आध्यात्मिक चेतना में पूर्णतया अवस्थित कर लेता है, जो योग की चरम अवस्था है।

मन पर विजय प्राप्ति हेतु स्वाध्याय

शुद्ध होने पर ही मन आपका सच्चा मार्गदर्शक बनता है। इसके पूर्व मन का सहयोग न करें। तब मन आपका संचालक नहीं रहेगा, बल्कि आप मन के



संचालक बन जायेंगे। आप मनोजित् अर्थात् मन के स्वामी और इन्द्रियजित् अर्थात् इंद्रियों के स्वामी बन जायेंगे। हर साधक को यही प्रयास करना चाहिए। मन की इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास निरर्थक है क्योंकि यह सिद्धान्त है कि इच्छा-पूर्ति से कभी इच्छायें खत्म नहीं होतीं।

जो इच्छायें मन की सतह पर उभरती हैं, उनकी जड़ें अवचेतन मन में होती हैं और चूँकि जड़ें छिपी रहती हैं, आपको प्रतिदिन मन की खुदाई करनी होगी। दिनभर आप मन को बाहर की ओर खींचने में लगे रहते हैं। अब मन को अन्दर ले जाइये और देखने का प्रयास कीजिये कि वहाँ क्या चल रहा है। इसके लिए नियमित अभ्यास आवश्यक है, अन्यथा आप

सोचेंगे कि आप मन को देख रहे हैं, जबकि वास्तव में आप मन के साथ बह रहे होंगे। आपको अन्दर में डुबकी लगानी चाहिए और गहन आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। यह दोहरी प्रक्रिया है – पहले, मन की किरणों को अन्दर की ओर दिशान्तरित करें, और इसके बाद जब आप अन्दर जाते हैं तो अपनी सजगता को मन के एक निश्चित भाग पर केन्द्रित करें, उसका सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण करें।

आप उस वस्तु को देख नहीं सकते जो अंधेरे में है, इसके लिए आप उस पर टॉर्च की रोशनी डालते हैं। इसी प्रकार अपने मन की किरणों को अन्दर की ओर केन्द्रित करें और मन की विशेषताओं की जांच-पड़ताल करें। जिस तरह आप किसी सूक्ष्म चीज को देखने के लिए माइक्रोस्कोप का प्रयोग करते हैं उसी तरह अपने मन के अदृश्य भाग का अधिक सूक्ष्मता के साथ अलग से विश्लेषण करें। आप अपने मन को जानने लगेंगे, यह समझने लगेंगे कि वहाँ किस प्रकार की वृत्तियाँ हैं, सात्त्विक, राजसिक या तामसिक।

आपको बुद्धिमानी के साथ यह विश्लेषण करना है। यहाँ थोड़े विवेक की आवश्यकता है। आपको दो चीजों के विषय में सावधान रहना है। पहली चीज यह कि आपको निष्पक्ष होकर भीतर देखना है। यह आत्मनिरीक्षण मन के अवांछित तत्त्वों को निकाल बाहर करने और आवश्यक तत्त्वों की आपूर्ति के लिये किया जा रहा है। इसलिए आपको इस कार्य में निष्पक्ष होकर लगना चाहिए।

यदि मन के अध्ययन के पश्चात् आप आत्मसंतोष से भरे हैं, जो कुछ भी आपने मन में पाया है यदि उससे संतुष्ट हैं, तो ऐसा आत्मनिरीक्षण और आत्मविश्लेषण काम नहीं आयेगा। आपकी मनोवृत्ति विवेचनात्मक होनी चाहिए। जैसे आप दूसरे व्यक्तियों में दोष निकालते हैं, उसी विवेचनात्मक मन के साथ आपको अपने दोषों को भी निकालना चाहिए, नहीं तो आत्मविश्लेषण का कोई विशेष लाभ नहीं होगा।

दोषों का उन्मूलन

यदि आत्मनिरीक्षण के परिणाम स्वरूप आप पाते हैं कि आपमें निश्चित रूप से कुछ दोष हैं तो उन दोषों को दूर करने का उपाय खोजना चाहिए। यहाँ आत्मानुमोदन और आत्म-समर्थन से काम नहीं चलेगा। एक बार

आपको अपने दोषों का पता चल जाता है तो उन्हें दूर करने की कोई प्रभावी, व्यावहारिक विधि आपके पास होनी चाहिए।

आत्मनिरीक्षण के क्षणों में आपने स्वयं के बारे में जो मालूम किया है उसका सर्वोत्तम लाभ उठाने का उपाय खोजना चाहिए। पूर्ण शुद्धि तभी आ सकती है जब व्यापक, निष्पक्ष आत्मनिरीक्षण के बाद दोषों को दूर करने के व्यावहारिक उपायों का प्रयोग हो। यह आत्मनिरीक्षण प्रतिदिन होना चाहिए। प्रतिदिन अपने मन के अन्दर से कुछ कचरा बाहर फेंकते जाना चाहिए। शुद्धि की यही प्रक्रिया है।

छोटी-छोटी बातों का महत्त्व

दिव्य जीवन में दो और महत्त्वपूर्ण कदम उठाने हैं। प्रत्येक साधक को याद रखना चाहिए कि दिव्य जीवन को छोटी-छोटी चीजों में भी जीना होता है। यदि आपकी छोटी बातों में दिव्यता है तो आप बड़ी चीजों में भी दिव्य हो सकते हैं। अगर छोटे-छोटे कार्यों में आप दिव्य न हों तो बड़े कार्यों में दिव्यता की अपेक्षा मत रखिये। यदि आपका योग छोटी-छोटी चीजों में अभिव्यक्त हो सकता है तो बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ सहज ही आ जायेंगी।

कुछ साधक सोचते हैं कि छोटी-छोटी बातों का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। यदा-कदा कठोर शब्दों का उपयोग करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं लगती। वे सोचते हैं, 'कठोर शब्द कहने में कोई हानि नहीं है। आन्तरिक रूप से तो मैं पूर्णतया शान्त हूँ। ईश्वर तो केवल हृदय देखता है!' लेकिन हृदय तब तक शान्त नहीं हो सकता जब तक प्रत्येक कर्म प्रेम और करुणा से भरा न हो। हृदय तो सभी छोटे-बड़े कर्मों और शब्दों का योगफल है। यह संभव नहीं कि अन्दर में हृदय कोमल हो, और बाहर के सभी कार्यों एवं शब्दों में कठोरता।

जैसे एक-एक बूँद मिलकर सागर का निर्माण करती है, वैसे ही आपका एक-एक कर्म मिलकर आपके चरित्र का निर्माण करता है। आपकी दिन-प्रतिदिन की गतिविधियाँ दिव्य जीवन का, योगविद्या का सार हैं। आपको इस गलतफहमी में नहीं रहना चाहिए कि केवल एक महान् आदर्श अपना लेने से आपके विचार, वाणी और कर्म अपने आप पूर्णतया सम्यक् हो जायेंगे। जब तक आप अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में सावधान नहीं

होते और अपने आदर्श के अनुरूप अपने जीवन को नहीं ढालते तब तक आपका आदर्श साकार नहीं हो सकता है। यदि दिव्य जीवन के प्रमुख सिद्धान्तों के पालन के प्रति आप सजग हैं तो दिव्य जीवन का भवन स्वतः खड़ा हो जायेगा।

आत्म-संयम

ये प्रमुख सिद्धान्त कौन-से हैं? सत्यनिष्ठा, करुणा और शुद्धता – इन सद्गुणों से अपने सम्पूर्ण जीवन को आच्छादित करना चाहिए। आपका सम्पूर्ण जीवन, कम-से-कम प्रारम्भ में तो अवश्य ही संयम द्वारा निर्देशित होना चाहिए। आपको अपनी जिह्वा पर संयम रखना चाहिए। यह न सोचें कि आप कुछ भी खा सकते हैं, कुछ भी बोल सकते हैं और तब भी अच्छी तरह ध्यान कर सकते हैं। यदि आप ऐसा सोचते हैं तो स्वयं को धोखा दे रहे हैं। योग कोई खिलौना नहीं है जिसे आप आसानी से लेकर खेलने लगें। यह तो सुसज्जित सैनिकों के लौह दुर्ग के समान है।

प्रत्येक कार्य समुचित परीक्षण के बाद ही किया जाना चाहिए। भोजन की गुणवत्ता, उसकी मात्रा और उसे लेने का समय महत्वपूर्ण हैं। थोड़ा-सा ज्यादा भोजन या अनुचित समय पर किया गया भोजन आपके शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव डालकर ध्यान में बाधा उत्पन्न कर सकता है। अपने विचारों और कर्मों में संयम लाइये। सम्पूर्ण शरीर और मन संयमित होना चाहिए। आपका पूरा जीवन मर्यादित और संयमित होना चाहिए।

जब मैं 'संयम का गीत' गाता हूँ तो आपको उसका सही भाव समझना है। इस गीत के दो भाग हैं। 'थोड़ा खाना, थोड़ा पीना, थोड़ा बोलना, थोड़ा सोना' का तात्पर्य संयम से है। इन सब में अति नहीं होनी चाहिए। खाने, पीने, बोलने आदि को न्यूनतम तक ही सीमित रखना चाहिए। गीत के दूसरे भाग में कहा गया है, 'थोड़ा जप करो, थोड़ा आसन करो, थोड़ा कीर्तन भी करो।' यह संकेत देता है कि ये सभी अभ्यास अनिवार्य हैं और सभी को आपकी दिनचर्या में यथोचित स्थान मिलना चाहिए।

अभ्यास का अर्थ है किसी चीज को बार-बार करना और महर्षि पतंजलि ने इसको बड़े सुन्दर ढंग से परिभाषित किया है। योग सूत्रों में उन्होंने कहा है कि अभ्यास वह है जिसे लम्बे समय तक निरन्तर और श्रद्धापूर्वक करना

है। इससे वह दृढ आधार तैयार होता है जहाँ से आप अपनी साधना में आगे बढ़ सकते हैं —

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः । 1.14

अभ्यास मन को संयमित करने का प्रयास है ताकि वह दीपक की अखण्ड ज्योति के समान स्थिर हो जाय। मन को उसके स्रोत तक ले जाना और उसे आत्मा में समाहित कर देना अभ्यास है। मन को अन्दर की ओर मोड़ना और उसकी बहिर्मुखी प्रवृत्तियों को समाप्त कर देना अभ्यास है। अभ्यास लम्बे समय तक अखण्ड रूप से किया जाना चाहिए। इससे भक्ति सिद्ध होगी।

विनम्रता

अन्त में एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु को मन में रखना होगा। विनम्रता अच्छाई का मूलभूत आधार है। धैर्यपूर्ण परिश्रम द्वारा अर्जित सद्गुणों का पोषण-रक्षण विनम्रता ही करती है। नैतिक और आध्यात्मिक अभिमान साधक का महान् शत्रु है और विनम्रता इस शत्रु के विरुद्ध ढाल और कवच का काम करती है। दिव्य जीवन के मार्ग पर यथेष्ट प्रगति कर लेने पर भी सद्गुणी साधक जाने-अनजाने अहंकार का शिकार बन ही जाता है। आत्मानुमोदन का कपटपूर्ण भाव अन्दर आ ही जाता है। कालान्तर में यह दूसरों के प्रति तिरस्कार के रूप में अभिव्यक्त होगा। सेवा के निरन्तर अभ्यास द्वारा जीवन्त रखी गई विनम्रता इस शत्रु के विरुद्ध एकमात्र कवच है जो सच्चे साधक की सतत् रक्षा करती है।

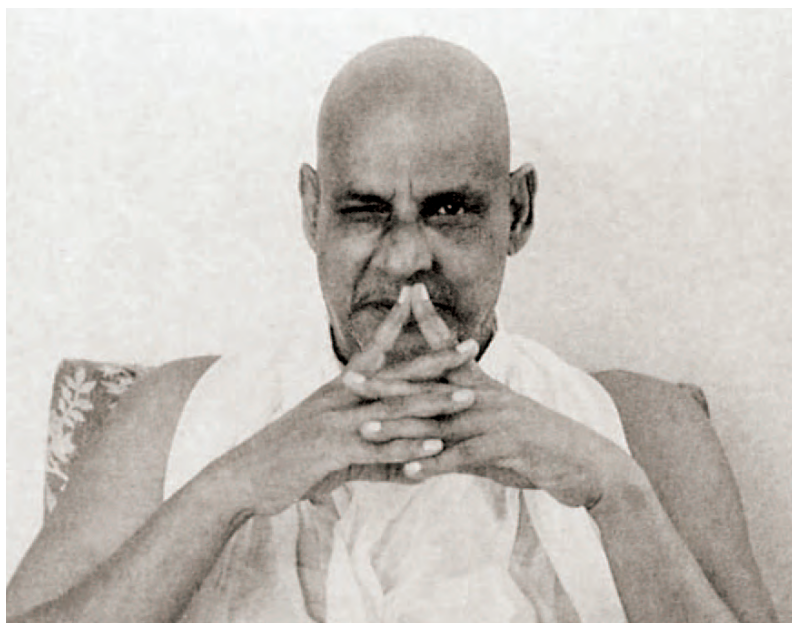
कभी-कभी लोग आपके दोषों की ओर इशारा करेंगे। भले ही आपको अपने दोषों की पहचान या याद न हो, फिर भी आपका यह कर्तव्य है कि उन्हें स्वीकार लें, क्योंकि आप अपने अवचेतन मन की शरारतों को नहीं जानते। मन इतनी चतुराई से खेलता है कि आपको इस बारे में कुछ जानकारी नहीं होती। यह इतनी सफाई से आपको अपने घेरे में ले लेता है कि आप स्वयं को मन का स्वामी ही समझते रहते हैं। ऐसा कभी न सोचिये और इसलिए यदि कोई आपकी गलतियों की ओर इंगित करता है तो कभी परेशान मत होइये। अहंकार के इस सूक्ष्म स्वरूप का भी नाश करने का प्रयास कीजिये।



निःस्वार्थ, विनम्र, प्रेमपूर्ण और नारायण भाव से युक्त सेवा द्वारा अपने क्षुद्र अहं को मिटा देने वाला साधक अनुपम आनन्द प्राप्त करता है। उस उत्कृष्ट आनन्द को भला कौन माप सकता है? इसलिए सभी साधक दिव्य गुणों के उपार्जन के परम महत्त्व और उन्हें जीवन में क्रियान्वित करने की अनिवार्य आवश्यकता को समझें तथा महान् निष्काम कर्मयोगी बनें।

छलिया मन

सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि मन आपको इन सभी शिक्षाओं को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण नहीं करने देगा। वह कहेगा, ‘अरे! तुम बिल्कुल ठीक



हो। यह सब तुम्हारे लिए नहीं है। इन सब सीखों की परवाह मत करो, तुम जैसे हो वैसे ही चलते रहो।' हे साधक! इस कपटी मन की बात मत सुनो, इसके साथ सहयोग न करो! इन शिक्षाओं को हृदयंगम करो। आध्यात्मिक मार्ग पर आप कहाँ हैं, यह ठीक-ठीक जानना बहुत कठिन है। मन की चालें अत्यन्त सूक्ष्म हैं। केवल सतत् आत्मविचार ही आपको सतर्क और सुरक्षित रखेगा। गहन आत्मनिरीक्षण ही मन की रहस्यमयी चालों को थोड़ा प्रकाशित कर सकेगा। मन की गहन जाँच-पड़ताल करो, इसे बिल्कुल ढील मत दो। मन आपके साथ समझौता करने का प्रयास करेगा। उसके गुप्त प्रयोजनों की अनवरत खोज करो। नियमित रूप से प्रतिदिन आत्मविश्लेषण करो।

आन्तरिक रूप से निरन्तर खोज और पूछ-ताछ चलाते रहो। आत्मविचार द्वारा मन का सूक्ष्म विश्लेषण करो। गुरु-कृपा के लिए प्रार्थना करो, वे ही आपको मन को परास्त कर उस पर शासन करने योग्य बना सकते हैं। अपनी बुद्धि को आलोकित करने हेतु भगवान से प्रार्थना करो। मन पर निगरानी रखो, और साथ ही प्रार्थना करो। मन की सूक्ष्म चालाकियों को आप आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण, विवेक, सजगता और प्रार्थना के माध्यम

से समझ सकते हैं। जब आप इन साधनाओं को प्रारम्भ करेंगे तो पायेंगे कि विभिन्न कठिनाइयाँ और बाधाएँ आ खड़ी होती हैं।

आन्तरिक सजगता

इन कठिनाइयों और बाधाओं का समाधान शीघ्र होना चाहिए। साधकों के लिए एक बड़ी कठिनाई यह होती है कि बाहरी ताकतों की अपेक्षा आन्तरिक शक्तियों से अधिक संघर्ष करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, बीमारियों की ओर देखें तो पाते हैं कि बाह्य परिस्थितियाँ कुछ विशेष बीमारियाँ ले आती हैं। इन बाह्य परिस्थितियों को हम बाह्य उपायों से दूर कर देते हैं। हम नालियाँ साफ कर देते हैं या नालियों में मच्छर-निरोधक घोल छिड़क देते हैं, कचरे को जला देते हैं, जल को स्वच्छ व संक्रमण-मुक्त कर देते हैं, लोगों को हैजा निरोधक टीका दे देते हैं और इस तरह हम बीमारियों को दूर कर देते हैं। लेकिन साधकों को जिन शक्तियों से संघर्ष करना पड़ता है उनमें से अधिकांश मानसिक होती हैं। इसलिए कठिनाई यह हो जाती है कि हम बाह्य कारकों की सहायता से इन आन्तरिक शत्रुओं पर निगरानी नहीं रख सकते। जब अन्दर समस्याएँ उत्पन्न होती हैं तो स्थानीय स्वास्थ्य विभाग को नहीं बुला सकते।

इन योग साधनाओं को करते समय आपको मानसिक सजगता की एक विशेष प्रतिभा विकसित करनी होगी। आपको मन के एक भाग को सतत् सावधान संतरी के रूप में प्रशिक्षित करना होगा। जब भी मन में कोई अशुभ विचार या कोई अध्यात्म-विरोधी शक्ति बाधा देने के लिए खड़ी होती है तो यह 'मानसिक संतरी' इस प्रकार प्रशिक्षित होना चाहिए कि तत्काल प्रहार करके उस बाधा को हटा दे। यह केवल दीर्घकालीन, निष्ठा युक्त अभ्यास के द्वारा हो सकता है। मन इतना कपटी है कि जब भी इसे सकारात्मक दिशा की ओर मोड़ते हैं तो इसके भीतर से पुराने नकारात्मक संस्कार और वृत्तियाँ उभरकर परेशान करने लगती हैं। इसलिए हमें इसे सख्ती के साथ नियंत्रित करना पड़ता है। हमें अपने मानसिक संतरी को तैयार रखना होता है, जो मन में उत्पन्न होने वाले अध्यात्म-विरोधी तत्त्वों को तत्काल रोक दे। यदि ऐसा मानसिक संतरी रखा जा सके, तो साधना की प्रक्रिया निर्विघ्न और सुसाध्य हो जायेगी।

साधना में सतत् संलग्न रहें

योग साधकों को अपने दोषों का निर्मूलन करने और अध्यात्म में शीघ्रता से बढ़ने के लिए प्रतिदिन आत्मपरीक्षण और आत्मविश्लेषण अवश्य करना चाहिए। आखिर एक माली क्या करता है? वह नन्हे पौधों की सावधानी से देख-रेख करता है। वह रोज उनकी क्यारियों से मोथों को निकालता है, उनके चारों ओर मजबूत घेरा लगाता है। प्रतिदिन उचित समय पर उनकी सिंचाई करता है। केवल तभी वे सुन्दर ढंग से बढ़ते और शीघ्र फल देते हैं। इसी प्रकार योग साधक को अपने दोषों का पता लगाना चाहिए और फिर उचित विधि से उनका निराकरण करना चाहिए।

यदि एक विधि असफल हो जाय तो अन्य विधियों को अपनाना चाहिए। यदि प्रार्थना असफल हो जाय तो हमें सत्संग, प्राणायाम, ध्यान, आहार नियमन, आत्मचिंतन इत्यादि का सहारा लेना चाहिए। हमें न केवल काम, क्रोध, मद और लोभ जैसी बड़ी वृत्तियों को नष्ट करना चाहिए जो मन की सतह पर प्रकट होती हैं बल्कि उनके सूक्ष्म संस्कारों को भी नष्ट करना चाहिए जो अवचेतन मन के कोनों में छिपे रहते हैं। केवल तभी हम पूरी तरह सुरक्षित रह सकते हैं। ये सूक्ष्म संस्कार खतरनाक होते हैं। वे चोरों की तरह छिपे रहते हैं और हम पर तब आक्रमण करते हैं जब हम थोड़े-से लापरवाह या उत्तेजित हो जाते हैं।

मन का अतिक्रमण

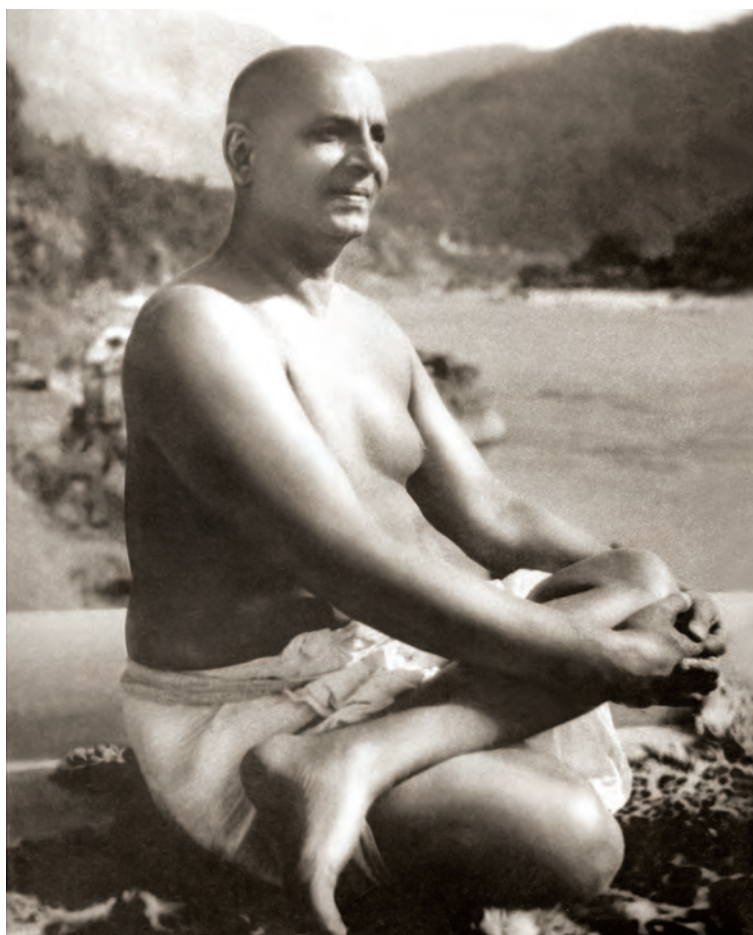
जब अनेक अवसरों पर अत्यधिक उत्तेजना पर भी ये दोष प्रकट नहीं होते, और उस समय आप दैनिक आत्मनिरीक्षण और आत्मविश्लेषण का अभ्यास भी नहीं कर रहे होते, तब आप आश्चर्य हो सकते हैं कि सूक्ष्म संस्कार नष्ट हो गये हैं। अब आप सुरक्षित हैं। आत्मनिरीक्षण और आत्मविश्लेषण के अभ्यास के लिए धैर्य, अध्यवसाय, दृढ़ संकल्प, परिश्रम, सूक्ष्म बुद्धि और साहस जैसे सद्गुण आवश्यक हैं, लेकिन साथ ही इस अभ्यास का फल भी अमूल्य है। वह फल है अमरता, परम शान्ति और असीम आनन्द का। इसलिए जब आप प्रतिदिन अभ्यास करते हैं तो उस समय शिकायत न करें, बल्कि अपने समग्र मन, हृदय, बुद्धि और आत्मा का उपयोग करें। तभी शीघ्र सफलता मिलेगी।

यह संसार हिरण्यगर्भ के विचारों का मूर्त स्वरूप है। इस तरह विज्ञान में आप ताप और विद्युत की तरंगें पाते हैं उसी तरह योग में विचार तरंगें होती हैं। विचार में आश्चर्यजनक शक्ति होती है। प्रत्येक व्यक्ति जाने-अनजाने कुछ हद तक विचार शक्ति का उपयोग कर रहा है। यदि आपको विचार तरंगों का व्यापक ज्ञान हो जाय, यदि आप विचारों के नियंत्रण की प्रक्रिया जान लेते हैं, यदि आप दूसरों तक लाभप्रद विचारों के सम्प्रेषण की विधि जान लेते हैं, तो आप इस विचार शक्ति को हजार गुना अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकते हैं।

विचारों में गति है, विचार आश्चर्यजनक कार्य करते हैं। विचार स्वास्थ्य और आरोग्य प्रदान करते हैं। विचारों का भार, आकृति, विस्तार और रंग होता है। बुरे विचार बंधनकारी होते हैं, जबकि अच्छे विचार स्वतंत्र करते हैं। इसलिए अपने विचारों को सकारात्मक रखें। विचार एक पैना उपकरण है जिसका अनुचित उपयोग कर्त्ता को चोट पहुँचा देगा। साधना में इसके समुचित स्थान को समझें और विवेकपूर्ण बनें। इसका समुचित विधि से उपयोग करें और मन पर नियंत्रण स्थापित करें। तब आप अध्यात्म-मार्ग में अवश्य सफल होंगे।

मनुष्य विविध रुचियों वाला जटिल सामाजिक प्राणी है। वह एक जैविक प्राणी भी है और इसलिए उसमें निश्चित रूप से इन्द्रिय ज्ञान, चिन्तन, स्मृति और कल्पना जैसी मनोकायिक प्रक्रियायें हैं। वह देखता, सोचता, चखता, सूँघता और भावनाओं का अनुभव करता है। दार्शनिक रूप से कहें तो वह परमात्मा का प्रतिरूप है। नहीं, वह साक्षात् ब्रह्म ही है। सांसारिक विषयों की संगति से उसने अपनी दिव्य महिमा खो दी है। अपनी उस खोयी दिव्यता को वह मानसिक अनुशासन और योग साधना द्वारा पुनः प्राप्त कर सकता है।

योग शरीर, मन और इन्द्रियों का अनुशासन है। योग सूक्ष्म आन्तरिक शक्तियों के समन्वय और नियंत्रण में सहायता करता है। योग पूर्णता, शान्ति और शाश्वत आनन्द प्रदान करता है। योग आपके दैनिक कार्यों और जीवन में सहायता कर सकता है। योग के अभ्यास से आपका मन हर समय शान्त और सौम्य रह सकता है। आप आरामदायक नींद और उच्चस्तरीय ऊर्जा, ओज तथा स्वास्थ्य पा सकते हैं। आप थोड़े ही समय में अपने कार्यों को



दक्षतापूर्वक पूरा कर सकते हैं। आप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफल हो सकते हैं। योग आप में आत्मबल, आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता भर देगा। योग के माध्यम से आप अपने मन, विचारों, वृत्तियों, भावनाओं और आवेगों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकते हैं। शरीर और मन सदा आपके आदेश पालन में तत्पर रहेंगे।

ईश्वर आपको इस ज्ञान का सदुपयोग करने और पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते रहें।

हरिः ॐ तत्सत्



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित
© बिहार योग विद्यालय 2022